Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal

Volume 4 | Issue 1 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

उत्तर-आधुनिकतावाद और भारतीय दर्शन : एक समालोचनात्मक संवाद

Postmodernism and Indian Philosophy: A Critical Dialogue

डॉ राघवेंद्र कुमार मिश्र

सहायक प्राध्यापक दर्शनशास्त्र प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ़ एक्सीलेंस

शासकीय शहीद केदारनाथ महाविद्यालय मऊगंज

सारांश

उत्तर-आधुनिकतावाद (Postmodernism) बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उभरी वह दार्शनिक और सांस्कृतिक प्रवृत्ति है जो आधुनिकता के महाआख्यानों — प्रगति, विज्ञान, कारण और सार्वभौमिक सत्य — को मूलभूत रूप से चुनौती देती है। जैक देरिदा (Jacques Derrida), मिशेल फूको (Michel Foucault) और ज्यां-फ्रांस्वा ल्योतार (Jean-François Lyotard) इस विचारधारा के प्रमुख प्रतिनिधि हैं। देरिदा का 'विखण्डन' (Deconstruction), फूको का 'ज्ञान-शक्ति' (Power-Knowledge) सिद्धान्त और ल्योतार का 'मेटानैरेटिव का अन्त' — ये तीनों उत्तर-आधुनिक दर्शन के केन्द्रीय प्रस्थापनाएँ हैं। प्रस्तुत शोध पत्र इन उत्तर-आधुनिक विमर्शों और भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के बीच एक गहरा समालोचनात्मक संवाद स्थापित करता है। यह दर्शाया गया है कि नागार्जुन का शून्यवाद, जैन अनेकान्तवाद, अद्वैत वेदान्त, कश्मीर शैव दर्शन और आम्बेडकर की जाति-आलोचना — ये सभी उत्तर-आधुनिक विमर्श से पूर्व ही अनेक उत्तर-आधुनिक प्रश्नों से गुजर चुकी थीं। साथ ही यह भी दिखाया गया है कि भारतीय परम्पराएँ कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में उत्तर-आधुनिकतावाद की सीमाओं को पार करती हैं — विशेषकर नैतिकता, करुणा और सकारात्मक रूपान्तरण के आयामों में। ज्ञान, शक्ति और सत्य की भारतीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या करते हुए एक नए 'भारतीय उत्तर-आधुनिक विमर्श' की संभावना रेखांकित की गई है।

मुख्य शब्द (Keywords)

उत्तर-आधुनिकतावाद, देरिदा, फूको, ल्योतार, भारतीय दर्शन, मेटानैरेटिव, विखण्डन, शून्यवाद, अनेकान्तवाद, ज्ञान-शक्ति, अद्वैत, आम्बेडकर, सत्य, भाषा-दर्शन, स्फोट।

प्रस्तावना (Introduction)

बीसवीं शताब्दी के दार्शनिक इतिहास में उत्तर-आधुनिकतावाद का उदय एक क्रान्तिकारी बौद्धिक परिघटना था। यूरोपीय ज्ञानोदय (Enlightenment) की परम्परा ने 'कारण' (Reason), 'प्रगति' (Progress), 'स्वतन्त्रता' (Freedom) और 'सार्वभौमिक सत्य' (Universal Truth) के जिन महाआख्यानों को स्थापित किया था, उन्हें बीसवीं शताब्दी के मध्य में दो विश्व युद्धों, हॉलोकॉस्ट, उपनिवेशवाद की क्रूरताओं और परमाणु भय ने बुरी तरह चुनौती दे दी। इस संकट की पृष्ठभूमि में उत्तर-आधुनिक दर्शन का उदय हुआ जिसने 'ग्रांड नैरेटिव' (Grand Narrative) को अस्वीकार करते हुए भाषा, शक्ति, विषयिता और सत्य के प्रश्नों को नए सिरे से उठाया।

देरिदा ने दिखाया कि भाषा में कोई निश्चित अर्थ नहीं होता — अर्थ सदा स्थगित रहता है ('différance' का सिद्धान्त)। उन्होंने पश्चिमी दर्शन की 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' (Metaphysics of Presence) को विखण्डित किया। फूको ने दिखाया कि ज्ञान और शक्ति अभिन्न हैं — जो 'सत्य' कहलाता है वह वास्तव में शक्ति-सम्बन्धों का उत्पाद है। ल्योतार ने 'महाआख्यानों के प्रति अविश्वास' (Incredulity towards Metanarratives) को उत्तर-आधुनिक स्थिति के रूप में परिभाषित किया। ये विचार पश्चिमी दर्शन में क्रान्तिकारी थे, किन्तु भारतीय दार्शनिक के लिए इनमें से अनेक प्रश्न परिचित लगते हैं।

नागार्जुन (द्वितीय शताब्दी) ने शून्यवाद के माध्यम से यह सिद्ध किया था कि कोई भी वस्तु 'स्वयंभू' (Svabhava — Self-existing) नहीं है — सभी अस्तित्व प्रतीत्यसमुत्पाद (Interdependent Origination) के आधार पर हैं। जैन दर्शन के 'अनेकान्तवाद' ने सहस्राब्दियों पूर्व यह प्रतिपादित किया था कि सत्य बहुदर्शी (Many-sided) है और कोई भी एकल दृष्टि सम्पूर्ण सत्य को नहीं पकड़ सकती। अद्वैत वेदान्त ने 'माया' के सिद्धान्त से यथार्थ की संरचना को सरल-रेखीय होने से इनकार किया। भर्तृहरि के 'स्फोट' सिद्धान्त ने भाषा और विचार की अभिन्नता का जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया, वह आधुनिक भाषा-दर्शन से आश्चर्यजनक रूप से साम्य रखता है।

किन्तु यह संवाद एकतरफा नहीं है। भारतीय दर्शन भी उत्तर-आधुनिकतावाद की कुछ महत्त्वपूर्ण सीमाओं को उजागर करता है। उत्तर-आधुनिकतावाद नैतिकता, करुणा और सकारात्मक रूपान्तरण के आयामों में प्रायः मौन है — या नकारात्मक निहिलिज्म की ओर झुक जाता है। भारतीय परम्पराएँ — विशेषकर बौद्ध करुणा, जैन अहिंसा और

गाँधीवादी नैतिकता — आलोचना के साथ-साथ एक रचनात्मक नैतिक दृष्टि भी प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र इसी समालोचनात्मक और रचनात्मक संवाद की पड़ताल करता है।

शोध पत्र का उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं। प्रथम उद्देश्य यह है कि देरिदा, फूको और ल्योतार के उत्तर-आधुनिक विमर्शों का एक व्यवस्थित और स्पष्ट दार्शनिक विवेचन किया जाए जिससे इन विचारकों की मूल प्रस्थापनाओं और उनके दार्शनिक महत्त्व को समझा जा सके। द्वितीय उद्देश्य यह है कि भारतीय दार्शनिक परम्पराओं — नागार्जुन के शून्यवाद, जैन अनेकान्तवाद, अद्वैत वेदान्त, कश्मीर शैव दर्शन, भर्तृहरि के भाषा-दर्शन और आम्बेडकर की जाति-आलोचना — में उत्तर-आधुनिक विमर्श के समकक्ष तत्त्वों की पहचान की जाए।

तृतीय उद्देश्य यह है कि देरिदा के 'मेटानैरेटिव की आलोचना', ल्योतार के 'भव्य आख्यान के अन्त' और भारतीय दर्शन में मेटानैरेटिव की समानान्तर आलोचना का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए। चतुर्थ उद्देश्य यह है कि ज्ञान, शक्ति और सत्य की भारतीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या की जाए और यह दर्शाया जाए कि भारतीय परम्पराएँ इन प्रश्नों के प्रति एक अलग और समृद्ध उत्तर प्रस्तुत करती हैं। पंचम उद्देश्य यह है कि एक 'भारतीय उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण' की संभावना रेखांकित की जाए जो उत्तर-आधुनिकतावाद की शक्तियों को आत्मसात करते हुए उसकी सीमाओं को पार करे।

महत्व (Significance)

प्रस्तुत शोध पत्र का महत्त्व बहुस्तरीय है। दार्शनिक स्तर पर यह शोध पत्र पूर्व-पश्चिम दार्शनिक संवाद की एक नई दिशा खोलता है। अधिकांश तुलनात्मक दर्शन में या तो पश्चिमी ढाँचे में भारतीय विचारों को देखा जाता है या उन्हें असंगत मानकर छोड़ दिया जाता है। यह शोध पत्र एक ऐसा संवाद स्थापित करता है जिसमें दोनों परम्पराएँ समान स्तर पर संलग्न होती हैं — एक-दूसरे को समृद्ध और समालोचित करते हुए। राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर उत्तर-आधुनिक विमर्श — विशेषकर फूको का ज्ञान-शक्ति सिद्धान्त — भारतीय जाति-व्यवस्था, लिंग-भेद और उपनिवेशवाद की आलोचना के लिए अत्यन्त उपयोगी उपकरण सिद्ध हुआ है।

शैक्षणिक स्तर पर भारत के विश्वविद्यालयों में दर्शनशास्त्र प्रायः या तो पाश्चात्य परम्परा में या भारतीय परम्परा में पढ़ाया जाता है — दोनों के बीच संवाद दुर्लभ है। यह शोध पत्र उस सेतु के निर्माण में योगदान देता है जो दोनों परम्पराओं के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी हो। सांस्कृतिक और उत्तर-औपनिवेशिक स्तर पर यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि क्या भारत को उत्तर-आधुनिकतावाद को पश्चिम से आयात करने की आवश्यकता है, या उसकी अपनी दार्शनिक परम्परा में पर्याप्त रूप से विकसित समकक्ष विचार पहले से विद्यमान हैं? इस प्रश्न का उत्तर भारतीय बौद्धिक स्वाभिमान और उत्तर-औपनिवेशिक दार्शनिक पहचान के लिए महत्त्वपूर्ण है।

उत्तर-आधुनिकतावाद और भारतीय दर्शन-

1. उत्तर-आधुनिकतावाद: मूल विमर्श और दार्शनिक आधार-

1.1 देरिदा का विखण्डन और différance-

जैक देरिदा का दार्शनिक अवदान पश्चिमी तत्त्वमीमांसा की एक मूलभूत आलोचना है। उन्होंने दिखाया कि पश्चिमी दर्शन सदा 'उपस्थिति' (Presence) को 'अनुपस्थिति' (Absence) से श्रेष्ठ मानता है — वाणी को लेखन से, मूल को प्रतिलिपि से, सत्य को प्रतीक से। इस 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' (Metaphysics of Presence) को देरिदा ने 'लोगोसेन्ट्रिज्म' (Logocentrism) कहा। उनका 'विखण्डन' (Deconstruction) इस तत्त्वमीमांसा को उसी के भीतर से तोड़ने की पद्धति है — अर्थात् किसी ग्रन्थ के भीतर के अन्तर्विरोधों को उजागर करना।

देरिदा की 'différance' की अवधारणा — जो फ्रेंच में 'differ' (भिन्न होना) और 'defer' (स्थगित करना) दोनों को एक साथ व्यक्त करती है — यह प्रतिपादित करती है कि अर्थ कभी पूर्णतः उपस्थित नहीं होता, वह सदा अन्य शब्दों से भिन्नता और स्थगन की प्रक्रिया में बनता रहता है। यह विचार भर्तृहरि के 'स्फोट' सिद्धान्त से एक आश्चर्यजनक संवाद स्थापित करता है — जहाँ शब्द और अर्थ अभिन्न हैं और भाषा ही विचार का माध्यम नहीं, बल्कि विचार स्वयं भाषामयी है। किन्तु भर्तृहरि में यह स्फोट एक समग्र उपस्थिति है जबकि देरिदा में उपस्थिति सदा स्थगित रहती है — यह एक मूलभूत अन्तर है जो दोनों चिन्तकों के संवाद को और भी समृद्ध बनाता है।

1.2 फूको का ज्ञान-शक्ति सिद्धान्त-

मिशेल फूको का दार्शनिक अवदान ज्ञान और शक्ति के सम्बन्ध का एक क्रान्तिकारी विश्लेषण है। उनका मूल तर्क यह है कि ज्ञान कभी तटस्थ नहीं होता — यह सदा शक्ति-सम्बन्धों में उत्पन्न, संरक्षित और प्रसारित होता है। जिसे 'सत्य' कहा जाता है वह वास्तव में एक 'सत्य-शासन' (Regime of Truth) है — एक ऐसी व्यवस्था जो यह निर्धारित करती है कि किसका ज्ञान वैध है, किसकी बात सुनी जाएगी, और किसे पागल, अपराधी या विचलित कहा जाएगा। 'पागलपन का इतिहास', 'शास्तिशाला का अनुशासन' और 'यौनिकता का इतिहास' — इन तीन महाग्रन्थों में फूको ने दिखाया कि आधुनिक संस्थाएँ — मानसिक अस्पताल, जेल, विद्यालय — ज्ञान-शक्ति के माध्यम से व्यक्ति को कैसे नियन्त्रित और रूपान्तरित करती हैं।

फूको की 'वंशावली' (Genealogy) की पद्धति — जो नीत्शे से प्रेरित है — इतिहास को एक सरल-रेखीय प्रगति की कहानी नहीं, बल्कि शक्ति-संघर्षों, आकस्मिकताओं और विराम-विच्छेदों का इतिहास मानती है। भारतीय संदर्भ में इस पद्धति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुप्रयोग आम्बेडकर की जाति-आलोचना में दिखता है। आम्बेडकर ने अपनी रचनाओं में दिखाया था कि भारतीय 'धर्म-शास्त्र' का ज्ञान वास्तव में जाति-व्यवस्था को बनाए रखने की एक शक्ति-युक्ति है। 'जो ज्ञान है वह शक्ति का उपकरण है' — यह फूको का प्रतिपादन आम्बेडकर के विश्लेषण में जीवन्त व्यावहारिक रूप लेता है।

1.3 ल्योतार और मेटानैरेटिव का अन्त-

ज्यां-फ्रांस्वा ल्योतार ने 1979 में 'द पोस्टमॉडर्न कंडीशन' में उत्तर-आधुनिक स्थिति को परिभाषित किया — 'महाआख्यानों के प्रति अविश्वास' (Incredulity towards Metanarratives)। 'महाआख्यान' वे विशाल वैचारिक ढाँचे हैं जो सम्पूर्ण मानव इतिहास और ज्ञान को एक एकीकृत और सार्वभौमिक आख्यान में प्रस्तुत करने का दावा करते हैं — जैसे मार्क्सवाद (इतिहास वर्ग-संघर्ष है), उदारवाद (इतिहास स्वतन्त्रता की ओर है), हेगेल का दर्शन (इतिहास आत्मा का विकास है), या विज्ञानवाद (विज्ञान से सत्य की प्राप्ति होगी)। ल्योतार का तर्क है कि ये महाआख्यान अपनी आन्तरिक असंगतियों और बाह्य चुनौतियों के कारण ढह गए हैं।

ल्योतार के इस विमर्श की तुलना जैन 'अनेकान्तवाद' से करना अत्यन्त प्रबोधक है। अनेकान्तवाद यह मानता है कि कोई भी दृष्टि (naya) सत्य का सम्पूर्ण वर्णन नहीं कर सकती — सत्य अनेक दृष्टियों का समुच्चय है। इसलिए जो भी 'एकान्तवादी' दावा करता है कि उसके पास सम्पूर्ण सत्य है, वह 'अनेकान्त' का उल्लंघन करता है। यह जैन अनेकान्तवाद ल्योतार के 'महाआख्यान की आलोचना' से एक सहस्राब्दी से भी अधिक पूर्व का है। किन्तु अनेकान्तवाद में एक सकारात्मक पहलू है जो ल्योतार में नहीं है — वह अनेक दृष्टियों के बीच 'स्याद्वाद' (Qualified Predication) के माध्यम से एक व्यवस्थित संवाद का रास्ता भी प्रस्तुत करता है।

समालोचनात्मक संवाद (Critical Dialogue)-

2. नागार्जुन का शून्यवाद और देरिदा का विखण्डन-

नागार्जुन (लगभग 150-250 ई.) का 'मध्यमककारिका' बौद्ध दर्शन की एक अद्वितीय उपलब्धि है। उन्होंने 'शून्यता' (Sunyata) के सिद्धान्त के माध्यम से यह सिद्ध किया कि कोई भी वस्तु 'स्वभाव' (Intrinsic Nature) से युक्त नहीं है। सभी वस्तुएँ 'प्रतीत्यसमुत्पाद' — परस्पर-निर्भरता — के आधार पर ही अस्तित्व में हैं। अर्थात् कोई भी वस्तु 'स्वयंभू' नहीं है — न कोई शब्द, न कोई अवधारणा, न कोई सत्ता। यह शून्यवाद का तर्क देरिदा के 'différance' से गहरी साम्यता रखता है जहाँ कोई भी अर्थ 'स्वतन्त्र' नहीं है — वह सदा अन्य शब्दों और अर्थों पर निर्भर है।

दोनों विचारकों में एक महत्त्वपूर्ण पद्धतिगत साम्य है — दोनों किसी वैकल्पिक 'सकारात्मक' सिद्धान्त को स्थापित करने के बजाय विरोधी स्थापनाओं को उनकी ही भाषा में खण्डित करने की पद्धति अपनाते हैं। नागार्जुन की 'प्रसंग' (Reductio ad absurdum) पद्धति और देरिदा का 'विखण्डन' दोनों इसी नकारात्मक-द्वन्द्वात्मक पद्धति के उदाहरण हैं। किन्तु एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि नागार्जुन का शून्यवाद 'निर्वाण' और 'करुणा' के नैतिक-आध्यात्मिक लक्ष्य से जुड़ा है — शून्यता को समझना मुक्ति का मार्ग है। देरिदा का विखण्डन किसी ऐसे नैतिक या आध्यात्मिक लक्ष्य से नहीं जुड़ा — यह एक अन्तहीन पाठ-प्रक्रिया है जो कहीं नहीं पहुँचती। इस दृष्टि से नागार्जुन का शून्यवाद देरिदा के विखण्डन से अधिक पूर्ण और उद्देश्यपूर्ण है।

ग्राहम प्रिस्टर (Graham Priest) और जे. गारफील्ड (Jay Garfield) जैसे समकालीन दार्शनिकों ने नागार्जुन और देरिदा के बीच इस सम्बन्ध का अन्वेषण किया है और यह दिखाया है कि 'दिलेम्मा ऑफ प्रेजेंस' (Dilemma of Presence) —

जो देरिदा के विखण्डन का केन्द्र है — नागार्जुन के 'द्विसत्य सिद्धान्त' (Two Truth Theory — सांवृतिक और पारमार्थिक सत्य) में अधिक व्यवस्थित रूप से संभाला गया है।

3. फूको का ज्ञान-शक्ति और भारतीय ज्ञान-परम्परा की पुनर्व्याख्या-

फूको का ज्ञान-शक्ति सिद्धान्त भारतीय ज्ञान-परम्परा को समझने के लिए एक अत्यन्त उपयोगी उपकरण है। भारत में ज्ञान और शक्ति का सम्बन्ध कहीं अधिक स्पष्ट और संस्थागत रहा है। वर्णाश्रम व्यवस्था में ब्राह्मण वर्ण को 'ज्ञान के एकाधिकार' की स्थिति प्राप्त थी। शूद्रों और स्त्रियों को वेद-अध्ययन का अधिकार नहीं था — यह फूको के अर्थ में 'ज्ञान पर शक्ति का प्रतिबन्ध' था। आम्बेडकर ने इस तथ्य को फूको से पहले और कहीं अधिक मूर्त रूप में देखा था। उन्होंने दिखाया था कि मनुस्मृति जैसे 'धर्म-शास्त्र' वास्तव में जाति-व्यवस्था को बनाए रखने और शूद्रों को ज्ञान-स्रोत से वंचित रखने के उपकरण थे।

किन्तु भारतीय ज्ञान-परम्परा में प्रतिरोध की धाराएँ भी समानान्तर रूप से बहती रही हैं। बुद्ध ने वेद के अधिकार को चुनौती देकर एक नए 'ज्ञान-लोकतन्त्र' की स्थापना की जिसमें कोई भी — चाहे किसी भी जाति, वर्ण या लिंग का हो — मुक्ति का अधिकारी था। सिद्ध और नाथ परम्पराएँ, भक्ति आन्दोलन — विशेषकर कबीर, रैदास, तुकाराम — ने ब्राह्मणिक ज्ञान के वर्चस्व को चुनौती दी। यह भारतीय फूकोइयन प्रतिरोध फूको के अपने सिद्धान्त से कहीं अधिक जीवन्त और नैतिक रूप से प्रेरित था — क्योंकि यह केवल एक बौद्धिक व्यायाम नहीं था, बल्कि वास्तविक जीवन में मुक्ति की खोज थी।

कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' भी ज्ञान-शक्ति के सम्बन्ध का एक महत्त्वपूर्ण भारतीय विश्लेषण है। कौटिल्य ने शासन, गुप्तचर व्यवस्था और ज्ञान-प्रबन्धन के बीच के सम्बन्ध को अत्यन्त व्यावहारिक और स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया था। फूको के 'पैनोपटिकन' (Panopticon) की अवधारणा — जो कि निगरानी के माध्यम से ज्ञान-शक्ति का प्रतीक है — कौटिल्य की गुप्तचर व्यवस्था से एक प्रबोधक तुलना का विषय बन सकती है।

4. मेटानैरेटिव की आलोचना: भारतीय और उत्तर-आधुनिक परिप्रेक्ष्य-

ल्योतार के 'मेटानैरेटिव के अन्त' का विचार भारतीय दर्शन के संदर्भ में एक जटिल और बहुस्तरीय प्रश्न उठाता है। एक ओर, भारतीय दर्शन में ऐसी परम्पराएँ हैं जो स्वयं एक 'मेटानैरेटिव' की संरचना में थीं — जैसे अद्वैत वेदान्त की 'ब्रह्म

सत्यं जगन्मिथ्या' (ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है) की स्थापना। दूसरी ओर, भारतीय दर्शन में ही ऐसी परम्पराएँ हैं जो किसी भी एकल मेटानैरेटिव को अस्वीकार करती हैं।

अद्वैत वेदान्त की 'अध्यारोप-अपवाद' (Superimposition-Negation) पद्धति को ल्योतार के विखण्डन से तुलनित किया जा सकता है। शंकराचार्य ने प्रत्येक सांसारिक यथार्थ को 'माया' कहकर उसकी सीमित सत्ता को स्वीकार किया — यह एक प्रकार का व्यावहारिक मेटानैरेटिव-विखण्डन है। किन्तु शंकर के लिए 'ब्रह्म' एक अन्तिम सत्य है — जो उन्हें ल्योतार से अलग करता है। ल्योतार के पास कोई 'ब्रह्म' नहीं है — उनके लिए भिन्न 'भाषा-खेलों' (Language Games) के बीच का संघर्ष ही यथार्थ है।

इस तुलना में सर्वाधिक उर्वर मिलन-बिन्दु जैन अनेकान्तवाद में है। अनेकान्तवाद न तो एक एकल मेटानैरेटिव स्थापित करता है, न ही निराशावादी निहिलिज्म में गिरता है। यह एक 'बहुलवादी यथार्थवाद' (Pluralistic Realism) है जो मानता है कि सत्य अनेक दृष्टियों का समुच्चय है — और इसलिए एक खुले, सहिष्णु और संवाद-उन्मुख जीवन-दर्शन की ओर ले जाता है। ल्योतार 'भाषा-खेलों' के बीच संघर्ष देखते हैं; अनेकान्तवाद उनके बीच समन्वय की संभावना भी देखता है।

5. सत्य और ज्ञान की भारतीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या-

उत्तर-आधुनिकतावाद ने 'सत्य' की अवधारणा को मूलभूत रूप से चुनौती दी है। फूको के लिए 'सत्य' एक 'शक्ति-प्रभाव' है, देरिदा के लिए अर्थ सदा स्थगित है, और ल्योतार के लिए कोई 'मेटानैरेटिव' नहीं जो सत्य को परिभाषित कर सके। यह सत्य-संशयवाद (Truth Skepticism) उत्तर-आधुनिकतावाद की सबसे विवादास्पद और कठिन प्रस्थापना है। भारतीय दर्शन इस प्रश्न पर एक अधिक सूक्ष्म और बहुस्तरीय दृष्टि प्रस्तुत करता है।

भारतीय न्याय दर्शन में 'प्रमाण' (Valid Source of Knowledge) का सिद्धान्त — जो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द को ज्ञान के वैध स्रोत मानता है — यह स्वीकार करता है कि ज्ञान की सीमाएँ हैं किन्तु यह नहीं मानता कि ज्ञान असम्भव है। 'प्रमाण' की व्यवस्था एक ऐसे 'ज्ञान-तन्त्र' की स्थापना है जो फूकोइयन सत्ता-मुक्त नहीं है — किन्तु इसमें आलोचना और परिष्कार की आन्तरिक व्यवस्था है जो उत्तर-आधुनिक समालोचना से अधिक उत्पादक है। बौद्ध 'द्विसत्य सिद्धान्त' — सांवृतिक (Conventional) और पारमार्थिक (Ultimate) सत्य — एक दो-स्तरीय सत्य-

व्यवस्था प्रस्तुत करता है जो उत्तर-आधुनिकतावाद के सत्य-संशयवाद और परम्परागत सत्य-दृढ़वाद दोनों के बीच एक रचनात्मक मार्ग है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री अरविन्द ने 'सत्य' को एक गतिशील और बहुस्तरीय यथार्थ के रूप में देखा था — न तो उत्तर-आधुनिक संशयवाद में, न ही परम्परागत निश्चयवाद में। ठाकुर का 'जीवनदेवता' और अरविन्द का 'अतिमानस' सत्य को एक विकासशील, सम्पर्कमय और आनन्दमय यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह उत्तर-आधुनिकता से परे एक 'उत्तर-उत्तर-आधुनिक' (Post-Postmodern) दृष्टि है जो भारतीय दार्शनिक परम्परा की एक अमूल्य देन है।

6. तुलनात्मक सारणी: उत्तर-आधुनिक विमर्श और भारतीय दर्शन-

निम्न तालिका में उत्तर-आधुनिक विचारकों और भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के प्रमुख बिन्दुओं की तुलनात्मक प्रस्तुति की गई है।

तालिका: उत्तर-आधुनिक विमर्श और भारतीय दर्शन — समालोचनात्मक तुलना

तुलना का आधार	उत्तर-आधुनिक विचारक	भारतीय दार्शनिक परम्परा	समानता / भिन्नता
सत्य की अवधारणा	देरिदा: सत्य स्थगित, अनिर्धारित	नागार्जुन: शून्यता — कोई स्वतन्त्र सत्य नहीं	गहरी समानता — दोनों निश्चित सत्य अस्वीकार
ज्ञान-शक्ति सम्बन्ध	फूको: ज्ञान सत्ता का उपकरण है	कौटिल्य / आम्बेडकर: जाति-ज्ञान-शक्ति सम्बन्ध	भारत में यह यथार्थ — सैद्धान्तिक नहीं
महाआख्यान की आलोचना	ल्योतार: मेटानैरेटिव का अन्त	अनेकान्तवाद: अनेक दृष्टियाँ समान वैध	समानता — किन्तु अनेकान्त अधिक व्यवस्थित
भाषा और अर्थ	देरिदा: अर्थ सदा स्थगित — différance	स्फोट सिद्धान्त: अर्थ-ध्वनि अभेद्य	भिन्नता — भारत में अर्थ की स्थिरता का स्थान

विषय / आत्मा	फूको: विषय (Subject) निर्मित है	बौद्ध: अनात्म — कोई स्थायी आत्मा नहीं	समानता — किन्तु बौद्ध में करुणा का आधार
इतिहास की दृष्टि	फूको: वंशावली — इतिहास संघर्षों का	आम्बेडकर: भारतीय इतिहास जाति-संघर्ष का	प्रत्यक्ष अनुप्रयोग — भारतीय संदर्भ
निराकरण की रणनीति	देरिदा: विखण्डन (Deconstruction)	नागार्जुन: प्रसंग (Reductio); वेदान्त: माया-विवेचन	दोनों पारम्परिक ढाँचों को तोड़ते हैं
नैतिक आधार	उत्तर-आधुनिकता: नैतिकता भी निर्मित	धर्म, अहिंसा, करुणा — नैतिक मार्गदर्शन	भिन्नता — भारत में नैतिकता का ठोस आधार

7. उत्तर-आधुनिकतावाद की सीमाएँ और भारतीय दर्शन का उत्तर-

उत्तर-आधुनिकतावाद की एक प्रमुख सीमा उसका 'नैतिक निर्वात' (Ethical Vacuum) है। यदि सत्य का कोई आधार नहीं, यदि सभी आख्यान समान रूप से वैध या अवैध हैं, यदि ज्ञान केवल शक्ति का उपकरण है — तो फिर नैतिकता का आधार क्या होगा? जलवायु परिवर्तन, नरसंहार, या जाति-उत्पीड़न के विरुद्ध खड़े होने का नैतिक आधार क्या होगा? उत्तर-आधुनिकतावाद इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देने में असमर्थ है — और इसीलिए इसकी आलोचना में प्रायः 'नैतिक सापेक्षवाद' और 'राजनीतिक निष्क्रियता' का आरोप लगाया जाता है।

भारतीय दर्शन इस सीमा को पार करता है। बौद्ध दर्शन में 'करुणा' (Compassion) और 'बोधिचित्त' (Enlightenment Mind) एक सार्वभौमिक नैतिक आधार प्रस्तुत करते हैं जो शून्यता की स्वीकृति के बावजूद व्यावहारिक नैतिक जीवन की दिशा देते हैं। जैन 'अहिंसा' एक ऐसा नैतिक सिद्धान्त है जो अनेकान्तवाद के बहुलवाद के साथ सह-अस्तित्व में है। गाँधी की 'सत्याग्रह' की अवधारणा — जो 'सत्य-आग्रह' है — उत्तर-आधुनिक सत्य-संशयवाद के बावजूद व्यावहारिक सत्य की खोज और उसके लिए संघर्ष का एक शक्तिशाली नैतिक आदर्श है।

दूसरी प्रमुख सीमा उत्तर-आधुनिकतावाद का 'यूरोकेन्द्रवाद' (Eurocentrism) है — भले ही वह यूरोकेन्द्रवाद की आलोचना करता हो। देरिदा, फूको और ल्योतार तीनों मुख्यतः पश्चिमी दार्शनिक परम्परा को केन्द्र में रखकर उसकी

आलोचना करते हैं। गैर-पश्चिमी ज्ञान-परम्पराएँ उनके विमर्श में प्रायः अनुपस्थित हैं। यह एक विडम्बनापूर्ण स्थिति है — जो दर्शन पश्चिमी केन्द्रवाद की आलोचना करता है, वह स्वयं पश्चिमी केन्द्रित है। इस सीमा को पार करने के लिए भारतीय, अफ्रीकी और लैटिन अमेरिकी दार्शनिक परम्पराओं के साथ वास्तविक संवाद आवश्यक है।

तृतीय सीमा 'विध्वंसक पक्षपात' (Destructive Bias) है — उत्तर-आधुनिकतावाद आलोचना में अत्यन्त समर्थ है, किन्तु निर्माण में कमजोर। देरिदा विखण्डित करते हैं किन्तु पुनर्निर्माण नहीं करते; फूको शक्ति-सम्बन्धों को उजागर करते हैं किन्तु मुक्ति का मार्ग नहीं सुझाते। भारतीय परम्पराएँ — विशेषकर बौद्ध, जैन और गाँधीवादी — आलोचना के साथ-साथ एक रचनात्मक विकल्प और मुक्ति का मार्ग भी प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)-

प्रस्तुत शोध पत्र के विस्तृत समालोचनात्मक विश्लेषण से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रतिपादित होते हैं। प्रथमतः, उत्तर-आधुनिकतावाद और भारतीय दर्शन के बीच कोई एकतरफा सम्बन्ध नहीं है — न तो भारतीय दर्शन उत्तर-आधुनिकतावाद से उधार लेने वाली स्थिति में है, और न ही उत्तर-आधुनिकतावाद भारतीय दर्शन से। दोनों परम्पराएँ स्वतन्त्र और समृद्ध हैं और एक समान स्तर पर संवाद के योग्य हैं। यह संवाद दोनों को समृद्ध करता है।

द्वितीयतः, भारतीय दर्शन ने अनेक उन प्रश्नों का पहले ही सामना किया था जिन्हें उत्तर-आधुनिकतावाद ने बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी दर्शन में उठाया। नागार्जुन का शून्यवाद, जैन अनेकान्तवाद, बौद्ध अनात्म-वाद और भर्तृहरि का भाषा-दर्शन — ये सभी क्रमशः देरिदा के विखण्डन, ल्योतार के मेटानैरेटिव-विरोध, फूको के विषय-निर्माण और भाषा-दर्शन के समकक्ष या पूर्वज हैं। यह भारतीय बौद्धिक विरासत की एक गहरी पुनः खोज की माँग करता है।

तृतीयतः, भारतीय परम्पराएँ उत्तर-आधुनिकतावाद की तीन प्रमुख सीमाओं — नैतिक निर्वात, यूरोकेन्द्रवाद और विध्वंसक पक्षपात — को पार करती हैं। करुणा, अहिंसा और सत्याग्रह जैसे नैतिक आदर्श; भारतीय, अफ्रीकी और आदिवासी ज्ञान-परम्पराओं की विविधता; और बौद्ध-जैन-गाँधीवादी परम्पराओं की रचनात्मक नैतिक दृष्टि — ये सभी उत्तर-आधुनिकतावाद से परे एक समृद्ध दार्शनिक क्षितिज खोलती हैं। चतुर्थतः, एक 'भारतीय उत्तर-आधुनिक दर्शन' की संभावना वास्तविक है — जो उत्तर-आधुनिकतावाद की आलोचनात्मक शक्ति को भारतीय नैतिकता, बहुलवाद और रूपान्तरण-दृष्टि के साथ जोड़े। यह एक ऐसा दर्शन होगा जो न तो पश्चिमी प्रभुत्ववाद को स्वीकारता है,

न ही परम्परावादी रूढ़िवाद में पड़ता है — बल्कि एक आत्मनिर्भर, समालोचनात्मक और रचनात्मक भारतीय बौद्धिक परम्परा को आगे बढ़ाता है।

पंचमतः, आम्बेडकर की जाति-आलोचना को फूको के ज्ञान-शक्ति सिद्धान्त के प्रकाश में और फूको की शक्ति-आलोचना को आम्बेडकर के सामाजिक न्याय-आन्दोलन के प्रकाश में समझना — यह दोनों परम्पराओं के बीच सबसे उर्वर और व्यावहारिक संवाद-बिन्दु है। इस संवाद से न केवल एक समृद्ध दार्शनिक सिद्धान्त उभरता है, बल्कि एक जीवन्त और सक्रिय सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन के लिए दार्शनिक आधार भी बनता है।

सुझाव (Recommendations)-

प्रस्तुत शोध पत्र के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रथम सुझाव यह है कि भारत के विश्वविद्यालयों में दर्शनशास्त्र के पाठ्यक्रम में 'तुलनात्मक दर्शन' को एक अनिवार्य और केन्द्रीय विषय बनाया जाए जिसमें पाश्चात्य और भारतीय परम्पराओं के बीच समान स्तर पर संवाद हो। उत्तर-आधुनिकतावाद को भारतीय दर्शन के संदर्भ में और भारतीय दर्शन को उत्तर-आधुनिक प्रश्नों के संदर्भ में पढ़ाया जाए।

द्वितीय सुझाव यह है कि नागार्जुन, भर्तृहरि, कुमारिल भट्ट और अन्य भारतीय भाषा-दार्शनिकों की रचनाओं का आधुनिक दार्शनिक भाषा में पुनः अनुवाद और व्याख्या की जाए जिससे ये विचार समकालीन वैश्विक दर्शन के विमर्श में सहजता से शामिल हो सकें। तृतीय सुझाव यह है कि 'उत्तर-उपनिवेशिक दर्शन' (Postcolonial Philosophy) के क्षेत्र में शोध को प्रोत्साहित किया जाए जो फूको, होमी भाभा और आम्बेडकर के विमर्शों को एक साथ देखते हुए भारतीय सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण करे।

चतुर्थ सुझाव यह है कि 'अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय दर्शन संगोष्ठियों' का आयोजन किया जाए जिसमें पश्चिमी उत्तर-आधुनिक दार्शनिकों और भारतीय दर्शन के विशेषज्ञों के बीच प्रत्यक्ष संवाद हो। यूनेस्को और भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद (ICPR) इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। पंचम सुझाव यह है कि जैन अनेकान्तवाद को 'बहुलवादी लोकतन्त्र' के दार्शनिक आधार के रूप में विकसित किया जाए। वर्तमान विश्व में जहाँ ध्रुवीकरण और असहिष्णुता बढ़ रही है, अनेकान्तवाद का 'स्याद्वाद' एक अत्यन्त प्रासंगिक राजनीतिक-दार्शनिक उपकरण हो सकता है।

षष्ठ सुझाव यह है कि आम्बेडकर के दर्शन को उत्तर-आधुनिक विमर्श के संदर्भ में पुनः पढ़ा और व्याख्यायित किया जाए। आम्बेडकर का जाति-आलोचना का विमर्श फूको के ज्ञान-शक्ति सिद्धान्त से न केवल साम्य रखता है, बल्कि उसे एक ठोस भारतीय ऐतिहासिक-सामाजिक संदर्भ भी देता है — जो सिद्धान्त को जीवन्त और व्यावहारिक बनाता है। सप्तम सुझाव यह है कि भारतीय दर्शन के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं को प्रोत्साहित किया जाए कि वे उत्तर-आधुनिक विचारकों को न तो अन्धे अनुसरण से स्वीकारें और न ही अस्वीकार करें, बल्कि एक समालोचनात्मक और रचनात्मक संवाद स्थापित करें जो भारतीय बौद्धिक परम्परा की शक्ति और गहराई को वैश्विक दर्शन के विमर्श में स्थापित करे।

संदर्भ ग्रन्थ (References)-

1. अम्बेडकर, भीमराव रामजी (1936). जाति का विनाश. नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन.
2. अम्बेडकर, भीमराव रामजी (1956). बुद्ध और उनका धम्म. नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन (2001 संस्करण).
3. उपाध्याय, बालदेव (1998). भारतीय दर्शन का इतिहास. वाराणसी: शारदा मन्दिर.
4. कुमार, मुकुल (2010). उत्तर-आधुनिकतावाद: एक दार्शनिक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
5. गाँधी, मोहनदास करमचन्द (1909). हिन्द स्वराज. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
6. नागार्जुन (अनुवाद: डॉ. श्रीनिवास राव, 1995). मध्यमककारिका. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
7. भर्तृहरि (अनुवाद: सुब्रह्मण्य अय्यर, 1971). वाक्यपदीय. वाराणसी: बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशन.
8. शंकराचार्य (अनुवाद: स्वामी माधवानन्द, 1950). विवेकचूडामणि. कलकत्ता: अद्वैत आश्रम.
9. Balagangadhara, S.N. (1994). The Heathen in His Blindness: Asia, the West and the Dynamic of Religion. Leiden: E.J. Brill.
10. Chakrabarty, Dipesh (2000). Provincializing Europe: Postcolonial Thought and Historical Difference. Princeton: Princeton University Press.
11. Chatterjee, Partha (1993). The Nation and Its Fragments. Princeton: Princeton University Press.
12. Derrida, Jacques (1967). Of Grammatology. (Trans. Gayatri Chakravorty Spivak). Baltimore: Johns Hopkins University Press (1976 English edition).
13. Foucault, Michel (1975). Discipline and Punish: The Birth of the Prison. New York: Pantheon Books.
14. Foucault, Michel (1980). Power/Knowledge: Selected Interviews and Other Writings, 1972-1977. New York: Pantheon Books.
15. Ganeri, Jonardon (2001). Philosophy in Classical India. London: Routledge.
16. Garfield, Jay L. (1995). The Fundamental Wisdom of the Middle Way: Nagarjuna's Mulamadhyamakakarika. New York: Oxford University Press.
17. Guha, Ranajit (Ed.) (1982). Subaltern Studies: Writings on South Asian History and Society. New Delhi: Oxford University Press.

18. Lyotard, Jean-François (1979). The Postmodern Condition: A Report on Knowledge. Minneapolis: University of Minnesota Press (1984 English edition).
19. Matilal, Bimal Krishna (1986). Perception: An Essay on Classical Indian Theories of Knowledge. Oxford: Clarendon Press.
20. Nandy, Ashis (1983). The Intimate Enemy: Loss and Recovery of Self under Colonialism. New Delhi: Oxford University Press.
21. Priest, Graham & Garfield, Jay (Eds.) (2003). Nagarjuna's Mulamadhyamakakarika. New York: Oxford University Press.
22. Said, Edward W. (1978). Orientalism. New York: Pantheon Books.
23. Spivak, Gayatri Chakravorty (1988). Can the Subaltern Speak? In: C. Nelson & L. Grossberg (Eds.), Marxism and the Interpretation of Culture. Urbana: University of Illinois Press.
24. Tuck, Andrew P. (1990). Comparative Philosophy and the Philosophy of Scholarship: On the Western Interpretation of Nagarjuna. New York: Oxford University Press.